अन्तर्राष्ट्रीय

6 अगस्त, 1984
"दैनिक जागरण" (कानपुर)

पश्चिमेशिया: इजराइल द्वारा नए नए रोड़े अटकाने शुरू

पिछले दिनों अनेक ऐसी घटनाएं सामने आई हैं, जिन्हें देखकर अरब– इजरायल विवाद के सुलझाने की सम्भावनाएं निकट दीख रही हैं। लेबनान से फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के शिविरों का सफाया, फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के अध्यक्ष यासेर अराफात के राजनीतिक भविष्य की अनिश्चितता और इनके मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक से तथा जॉर्डन के शाह हुसेन से संबंध अच्छा बनाने की कोशिश आदि तत्वों ने पश्चिम एशिया की फिलिस्तीनी समस्या को एक नया मोड़ दे दिया है। जाहिर है कि यासेर अराफात विभाजन होने के बाद से पी. एल. ओ. के ज्यादा ताकतवर गुप 'फतह' के अध्यक्ष हैं और इनके एक शुभचिंतक हुस्नी मुबारक ने इधर अरब की राजनीति से अपने को अलग– थलग कर लिया है। अलबत्ता हुस्नी मुबारक और शाह हुसैन फिलिस्तीनी मामले के शीघ्र निबटाने के लिए एकमत हैं। दूसरी ओर इन दोनों की रुचि देखकर इजरायल ने और भी नए–नए रोड़े अटकाने आरम्भ कर दिए हैं।

मगर २३ जुलाई को 'नेसेट' (इजरायली संसद का नाम) में लेबर पार्टी की आम चुनाव में मिली भारी विजय से कुछ सुधार के आसार नजर आ रहे हैं क्योंकि लेबर पार्टी के नेताओं के चुनावी भाषण और पहले के वक्तव्यों से लगता है कि तुरन्त सत्तारूढ़ हुई लिकुद पार्टी न केवल लेबनान से सभी विदेशी सेना के हटाए जाने तथा उसकी सुरक्षा का जिम्मा अपने ऊपर लेना चाहती है, बल्कि एक अर्से से अधिकृत फिलिस्तीनी भू–भाग गाजापट्टी और पश्चिमी किनारा को भी बातचीत के जरिए शीघ्र निबटारा करना चाहती है। आजकल इजरायल की आर्थिक हालत बड़ी खस्ता है लिकुद पार्टी को भी लेबर के साथ गठबंधन करना पड़ा है। सरकार में बेशक लिकुद पार्टी की स्थिति ज्यादा मजबूत है।

आगामी फिलिस्तीनी समस्या और यरुसलेम का भविष्य, ये दोनों मध्य पूर्व है अरब तथा इजरायल के बीच मनमुटाव का।

भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर अपने प्रारम्भिक वर्षों में इस समस्या के निदान के लिए एक व्यापक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था जिसमें लेबनान से इजरायली सेना की वापसी, १९६७ के अरब- इजरायल युद्ध में इजरायल द्वारा अधिकृत फिलिस्तीनी जमीन की वापसी और इजरायली समस्या पर संयुक्त राष्ट्रसंघ में एक प्रस्ताव पारित किया जाना आदि बातें शामिल थीं। हालांकि उस कार्यक्रम की कोई भी बात नयी नहीं थी।

अरब–इजरायल मनमुटाव का एक कारण 'वापसी' शब्द भी है, जो १९६७ में ही वातावरण को तनावपूर्ण बनाए हुए है। इजरायल "वापसी" का मतलब सारे अधिकृत क्षेत्रों की 'वापसी' मानने को तैयार नहीं है। राष्ट्रपति कार्टर की व्यापक निदान योजना जब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में गई तो उसे "शरणार्थी समस्या" के रूप में लिया गया। कार्टर की सारी योजना और सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव का इजरायल की हठधर्मी के आगे जनाजा निकल गया। इजरायल न तो सारे अधिकृत फिलिस्तीनी क्षेत्र खाली करने को तैयार हुआ न ही फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन को मान्यता देने को, जबकि इजरायली मान्यता को पूरे मध्यपूर्व में काफी महत्व की दृष्टि से देखा जाता, क्योंकि १९७४ से "फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन" अकेला बड़ा संगठन है जो सिर्फ फिलिस्तीनियों के हित के लिए संघर्षरत है और फिलिस्तीन के सम्बन्ध में होने वाली किसी बातचीत का एक महत्वपूर्ण हिस्सेदार भी।

फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन अपने को कम क्यों समझे? इसने भी इजरायल को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। अमरीका के समझौते के प्रयत्न लगातार विफल होते रहे। फिलिस्तीनी रुख के चलते अरब देशों के आपसी संबंधों में दरार आ गई। सीरिया, अरब और जॉर्डन तीनों एक प्रस्ताव पर इजरायल को सहमत करने को राजी हो गये थे, मगर ठीक इजरायल जैसा रुख फिलिस्तीनियों में भी अपना लिया।

यहां तक कि अमरीका का प्रयास भी अकारथ गया। इजरायल की हठधर्मिता और इजरायल के अमरीकी समर्थकों के दबाव में आकर फिलिस्तीनियों की अपनी जमीन के संबंध में राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर को अपने विचार में संशोधन करना पड़ा। उसी दौरान मिस्र के तत्कालीन राष्ट्रपति अनवर सादात के 'नेसेट' को सम्बोधित करने के निर्णय से भी लगा कि बस अब समाधान निकलना एकदम निश्चित है। सादात के भाषण का सारांश था कि मिस्र फिलिस्तीन समस्या का शीघ्र समाधान चाहता है ताकि अरब में शांति और सुरक्षा बरकरार रहे। बशर्ते कि मध्य भूमिका अमरीका की हो तथा सोवियत रूस को बातचीत में शामिल न किया जाए। सादात के इस भाषण से मिस्र अरब जगत से एकदम अलग– थलग पड़ गया। फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन और अरब देशों ने समझा कि उनके साथ विश्वासघात किया गया है। इजरायल और मिस्र में अवश्य कोई गुप्त संधि हुई है।

अमरीका की दलाली से हुए १९७८ का कैम्प डेविड समझौता तो कहीं से भी फिलिस्तीनी समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाया। बेशक यह समझौता समाधान की दिशा में एक अच्छी शुरुआत अवश्य थी। इजरायल के प्रधान मंत्री को किसी समझौते से कोई रुचि नहीं थी, सिवाय इसके कि यासेर अराफात बिना नुक्ताचीनी के उनकी तमाम शर्तें मान लें और जैसा मेनाहेम बेगिन चाहते हैं, वैसा होने दें। मेनाहेम बेगिन जानबूझकर समझौते की सार्थक बातचीत में तब तक अड़ंगा लगाना चाहते थे जब तक कि वे पश्चिमी किनारा और गाजीपट्टी को पूरी तरह इजरायल में मिला न लें। इधर लगातार इजरायली सेना और फिलिस्तीनी शरणार्थियों के बीच लेबनान में तथा इजरायल की सीमा से सटे भू–भाग में खूनी संघर्ष होते रहे। बड़ी संख्या में इजरायली सेना फिलिस्तीनियों को भूनती रही। १९७९ में मिस्र और इजरायल के बीच हुए समझौते (जिसमें मिस्र ने अपने को तटस्थ रखा) से भी थोड़ी राहत अरब देशों को मिली। क्योंकि मिस्र इजरायल का सबसे बड़ा समर्थक था।

राष्ट्रपति रेगन की पश्चिम एशिया में शांति और स्थिरता बनाए रखने की नीति में फारस की खाड़ी की समस्या ही हावी रही। वैसे भी राष्ट्रपति रेगन ने अपनी पश्चिम एशिया की नीति में नासमझी का परिचय दिया है। रेगन ने १९८० के अपने चुनावी अभियान में "फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन" को 'हत्यारों' की संज्ञा दी। फिलिस्तीनियों की समस्या सारे अरब देशों की समस्या है। रेगन की नकारात्मक नीति अरबों को बड़ी नागवार गुजरी। १९८२ में (अगस्त के दूसरे सप्ताह) लेबनान में इजरायली सेना द्वारा फिलिस्तीनी शरणार्थी कैम्पों पर किए गए भीषण हमलों से पूरे विश्व में बौखलाहट मच गई थी और अमरीका ने इजरायल को एक बार बुरा–भला तक नहीं कहा। इससे अरब– इजरायल संबंध में अभूतपूर्व तनाव आ गया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फिलिस्तीनियों का अपमान और इजरायल के कूटनीतिक पृथक्करण ने अमरीका को अपनी दलाली में नया रंग डालने को मजबूर कर दिया।

सितम्बर १९८२ में राष्ट्रपति रेगन ने अपना नया फार्मूला पेश किया। हालांकि इसे भी नया नहीं कहा जाना चाहिए, क्योंकि इसका आधार भी कैम्प डेविड समझौता ही था। रेगन ने सर्वप्रथम अरबों और फिलिस्तीनियों से इजरायल की वास्तविकता को स्वीकार करने की अपील की। इसके साथ ही फिलिस्तीनियों को पश्चिमी किनारा और गाजा पट्टी पर अपनी सरकार बनाने का अधिकार दिए जाने की बात भी शामिल थी जो पहले से कम महत्वपूर्ण थी। ठीक इसी तरह अमरीका ने भी "स्वतंत्र फिलिस्तीनी राज्य" बनाए जाने का विरोध किया। पश्चिमी किनारा और गाजा पट्टी को जॉर्डन के साथ स्वायत्तता प्रदान कर दी जाएगी तथा इजरायल न तो इस क्षेत्र में अपना विस्तार कर पाएगा, न ही कोई निर्माण–कार्य कर पाएगा, इस [illegible] अमरीका सहमत था।

रेगन ने नाटकीय उत्सुकता दिखाई औ[illegible] पहली बार जॉर्डन को बातचीत के लि[illegible] आमंत्रित किया। फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन [illegible] के कुछ नेताओं ने अध्यक्ष यासेर अराफात के [illegible] खिलाफ विद्रोह कर दिया और अराफात [illegible] एकता के प्रयास में लग गये। इसके लिए उन्हें अन्य अरब देशों की मदद लेनी पड़ी। सऊदी अरब के शाह खालिद ने रुचि दिखाई। अबू मूसा नामक एक सैनिक कमांडर ने अपने को पी. एल. ओ. का दूसरा अध्यक्ष घोषित किया। मगर सभी शासकों ने सर्वसम्मति से यासेर अराफात को वास्तविक अध्यक्ष और पी. एल. ओ. का एकमात्र प्रवक्ता मान लिया। इस चक्कर में यासेर अराफात बातचीत में शामिल नहीं हो सके। इधर जॉर्डन के शाह हुसेन को अरबों का यासेर अराफात को फिलिस्तीनियों का एकमात्र प्रवक्ता बनाया जाना पसन्द नहीं पड़ा, क्योंकि वो भी खुद को फिलिस्तीनियों का चहेता मानते हैं। फल यह हुआ कि शाह हुसेन ने रेगन का प्रस्ताव नामंजूर कर दिया, जबकि यासेर अराफात एकाध प्रस्ताव पर विमर्श करने को तैयार हो गये थे।

मिस्र पश्चिम एशिया का सबसे ताकतवर देश है, इसीलिए इजरायल अगर किसी पड़ोसी देश की मैत्री आवश्यक समझता है तो वह मिस्र है। अमरीका भी मिस्र और इजरायल को ही महत्व देता है। १९७३ से ही मिस्र का साइनाइ क्षेत्र इजरायल के कब्जे में था, जो इन दोनों देशों के बीच तनाव का कारण बना हुआ था। इजरायल अमरीका से किसी भी कीमत पर संबंध खराब नहीं करना चाहता, क्योंकि अरब देशों का इजरायल से भयभीत रहने का एकमात्र कारण अमरीकी समर्थन है। मिस्र भी अमरीका से मैत्री आवश्यक समझता है, ठीक यही बात अमरीका के साथ भी लागू होती है। इसलिए इजरायल ने साइनाइ का क्षेत्र खाली करके मिस्र से अपने संबंध अच्छे कर लिए। सारे अरब देशों का एकमात्र दुश्मन है इजरायल- मुसलमानों के बीच एकमात्र यहूदी देश। अगर अरबों के वश में होता तो ये कब का इजरायल का सफाया कर चुके होते। लेकिन दुर्भाग्य है कि ये सब मिलकर भी अकेला इजरायल से टक्कर नहीं ले सकते। अगर इनके पास सैनिक ताकत और कूटनीतिक बुद्धि होती तो ये कब का अपने फिलिस्तीनी भाइयों की छिनी हुई जमीन इजरायल के कब्जे से छुड़ाने में सफल हो गए होते। मिस्र को फिलिस्तीनियों से सहानुभूति तो है अवश्य, मगर इजरायल के विरुद्ध नहीं। यासेर अराफात बखूबी समझ रहे हैं कि अमरीका उन्हें बेवकूफ बना रहा है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक अरबों के हाथों इजरायल की हार नहीं होती, तब तक इजरायल अरबों की किसी भी बात पर सहमत नहीं हो सकता। जाहिर है कि इजरायल को हराना अरबों के लिए टेढ़ी खीर है। बैठकों और बातचीत से अगर फिलिस्तीनी समस्या का समाधान होना होता तो पिछले ११ वर्ष में अवश्य हो गया होता। १९७३ से ही लगातार बातचीत हो रही है जब इजरायल के हाथों जॉर्डन की बुरी तरह हार हुई थी और सारे फिलिस्तीनियों को खदेड़कर इजरायल ने लेबनान में शरण लेने को विवश कर दिया था। तभी से फिलिस्तीनी अपनी जमीन इजरायल के कब्जे से छुड़ाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं जो अरब– इजरायल संबंध में विवाद का मुख्य कारण है।

दरअसल अरब– इजरायल संघर्ष की शुरुआत हुई १९४९ में जब 'जुडियन' और 'सेमेरियन' के पहाड़ी गांवों पर जबर्दस्त हमले करके अरबों ने इजरायल के अनेक औद्योगिक प्लांट (जो हेते घाटी पर स्थित थे) क्षतिग्रस्त कर दिए। उस समय अरब काफी सबल थे। फिर अमरीका की मदद से इजरायल ने अपनी स्थिति इतनी मजबूत कर ली कि अब तो वो यदा–कदा अमरीका को भी आंखें दिखाने से बाज नहीं आता।

—शशिधर खां

मिस्र को छोड़कर अन्य अरब राष्ट्रों को तरजीह नहीं